RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2015-17

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 45, अंक : 25 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 22 सितम्बर, 2019

विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत् 1960853120

दयानन्दाब्द : 195 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 25, 19-22 सितम्बर 2019 तदनुसार 6 अश्विन, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

झूठ का त्याग करके सत्य का ग्रहण

ले०–स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।।

–अथर्व० १।५

शब्दार्थ–हे **व्रतपते** = व्रतरक्षक **अग्ने** = सर्वोन्नति–साधक परमेश्वर! मैं **व्रतम्** = व्रत **चरिष्यामि** = करना चाहता हूँ, **तत्** = उसको **शकेयम्** = मैं कर सकूँ, **मे** = मेरा **तत्** = वह व्रत **राध्यताम्** = सिद्ध हो, सफल हो। **अहम्** = मैं **अनृतात्** = मिथ्या को छोड़कर **इदंसत्यम्** = सत्य को **उप+एमि** = प्राप्त करता हूँ।

व्याख्या–शतपथब्राह्मण में [आरम्भ ही में] लिखा है कि मनुष्य व्रत का धारण करते हुए, दीक्षा लेते हुए इस मन्त्र को पढ़ता है। यह मन्त्र वास्तव में प्रत्येक मनुष्य का, विशेषकर आर्य का तो जप–मन्त्र होना चाहिए। भगवान् सत्यस्वरूप है। सत्य की रक्षा, सत्यव्रती की रक्षा भी वही करता है। तैत्तिरीयों की प्रार्थना है–

ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि, तन्मामवतु, तद्वक्तारमवतु।

ऋत बोलूँगा, सत्य बोलूँगा, वह सत्यस्वरूप परमेश्वर मेरी रक्षा करे, सत्यवक्ता की रक्षा करे।

सत्यवचन के रक्षक होने का वर्णन ऋग्वेद [१०।३७।२] में है–'**सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतः**' = वह सत्यवचन मेरी सब प्रकार रक्षा करे। वेद सत्य का बहुत पक्षपाती है। वेद में स्थान–स्थान पर सत्य के पालन का आदेश है।

(१) 'तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे'

–ऋ० १।२१।६

उस सत्य के साथ तुम पति–पत्नी दोनों चेतना देने वाले पद के लिए जागरूक रहो।

(२) अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया

–ऋ० १।४६।११

पार जाने के लिए ऋत का मार्ग ही अच्छा होता है।

(३) 'ऋतस्य देवा अनुव्रता गुः' [ऋ० १।६५।२] देव ऋत–व्रत के अनुगामी होते हैं।

शतपथब्राह्मण में '**अग्ने व्रतपते...**' मन्त्र की व्याख्या में लिखा है–**सत्यमेव देवाः** = विद्वान् सत्य हैं। वेद ने कहा–'**ऋतस्य देवा अनुव्रता गुः**'। शब्द भिन्न हैं, बात एक ही है। जो '**इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि**' [मैं झूठ को छोड़कर सत्य को ग्रहण करता हूँ] की प्रतिज्ञा करने लगा है, मानो वह देव बनने लगा है।

यदि देव= भगवान् की बातें सुनने का चाव है, तो देव बनो, क्योंकि–'**देवो देवाय गृणते**'–देव देव के प्रति बोलता है।

गुरुकुल से समावर्त्तन करके शिष्य को घर भेजते समय गुरु उपदेश देते हैं–'**सत्यं वद**' = सदा सच बोलो। जीवन को सर्वथा सत्यमय बनाना चाहिए। '**इदमहमनृतात्**' व्रत लेने वाला कह सके कि–'**ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान्**' [ऋ० ३।५५।१४]–मैं समझ–बूझकर ऋत के घर में विचरता हूँ। जीवन की प्रभात–वेला में कहता है– **अग्ने व्रतपते..... चरिष्यमि......।इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि।** जीवन के सान्ध्य समय में कहता है–**अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं य एवास्मि सोऽस्मि'।।** [यजु:० २।२८] हे व्रतरक्षक उन्नतिसाधक प्रभो! मैंने व्रत किया था, तेरी दया से उसे कर पाया, वह मेरा व्रत पूर्ण हुआ। जो कुछ मैं हूँ, वही हूँ। आरम्भ से अन्त तक जीवन सत्य से ओत–प्रोत होना चाहिए।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

इन्द्रा नु पूषणा वयं सखाय स्वस्तये।
हुवेम वाजसातये।।

–पू० ३.१.१.९

भावार्थ–हे सर्वपालक पोषक प्रभो! जो श्रेष्ठ पुरुष आपकी उपासना और आपका ही सत्कार करते हैं, आप उनको धन, अन्न, आत्मिक बल कल्याण आदि सब–कुछ देते हैं। जो लोग आपसे विमुख होकर दुराचार में फँसे हैं, उनको न तो यहाँ शान्ति वा सुख प्राप्त होता है, और न मरकर। इसलिए हमें वेदों के अनुसार चलने वाले सदाचारी, अपने भक्त बनाओ, जिससे धन, अन्न, बल और कल्याण सब–कुछ प्राप्त हो सके।

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन्।
न क्येवं यथा त्वम्।।

–पू० ३.१.१.१०

भावार्थ–हे देव! सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आप प्रभु के बनाये हुए हैं और उन ब्रह्माण्डों में रहने वाले समस्त प्राणी, आप जगन्नियन्ता की आज्ञा में वर्त्तमान हैं, आपकी आज्ञा को जड़ व चेतन कोई नहीं उल्लंघन कर सकता, इसलिए आपके बराबर भी कोई नहीं तो आपसे श्रेष्ठ व बड़ा कहाँ से होगा ? सब ब्रह्माण्डों के और उनमें रहने वाले प्राणिमात्र के पालक, रक्षक, सुखदायक भी आप सदा सुखी रहते हैं।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढमस्य पांसुले।।

–पू० ३.१.३.९

भावार्थ–आप विष्णु ने तीन लोक और लोकान्तर्गत अनन्त पदार्थ तथा सब प्राणियों के शरीर उत्पन्न किए हैं। इन सबको आपने ही धारण किया है और इन सब पदार्थों में अन्तर्यामी होकर व्याप रहे हैं। कोई लोक वा पदार्थ ऐसा नहीं, जहाँ आप विष्णु व्यापक न हों तो भी सूक्ष्म होने से हमारे इन चर्ममय नेत्रों से नहीं देखे जाते। कोई महात्मा ही अन्तर्मुख होकर आपको ज्ञाननेत्रों से जान सकता है, बहिर्मुख संसार के भोगों में सदा लम्पट मनुष्य तो हज़ारों जन्मों में भी आप जगन्नियन्ता परमात्मा को नहीं जान सकते।

वैदिक वाङ्मय में योग विद्या

ले.-डॉ. विक्रम कुमार विवेकी प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

योग का शाब्दिक अर्थ है-दो वस्तुओं या तत्वों को जोड़ना, युक्त करना। दार्शनिक क्षेत्र में योग शब्द से तात्पर्य होता है-एकाग्र होना, समाहित होना, आत्मा को परमात्मा के साथ युक्त करना। जिन साधनों से ऐसा योग यद्वा सायुज्य प्राप्त होता है वह भी योग कहलाता है। अर्थात् योग के आठ अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि भी योग शब्द से अभिधेय होते हैं। अत: यमान्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह तथा नियमान्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वरप्रणिधान ये दो पंचक आचरण भी योग कहलाते हैं। अत: स्पष्ट हुआ कि योग शब्द अब साधन और साध्य दोनों का वाचक है।

वैदिक ऋचाओं व तत्सम्बन्धी इतर वाङ्मय में योग व योग की विभिन्न पद्धतियों से सम्बन्धित विविध विचार विस्तार से प्राप्त होते हैं। वैदिक पद्धति में योग साधना का ध्येय आत्मा का परमात्मा के साथ सायुज्य यानी ऐक्य है। ऋग्वेदीय प्रस्तुत मन्त्र में योगाभीप्सु साधक की अभीप्सा सुन्दररूपेण अभिव्यक्त है-

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।

स्युष्टे सत्या इहाशिष:।।

(ऋक् 8.44.23)

हे अग्ने! सर्वाग्रणी प्रकाशमान् परमात्मन्! यदि मैं तू हो जाऊँ और तू मैं हो जाये तो इस लोक में तेरे समस्त शुभाशीर्वाद सत्य सिद्ध हो जायें। इस ऋचा में यह संकेत है कि सभी सांसारिक सम्बन्धों से सर्वोत्कृष्ट सम्बन्ध है आत्मा-परमात्मा का। अत: एक अन्य ऋचा में कहा गया है-

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।

स धीनां योगमिन्वति।।

(ऋक् 1.18.7)

अर्थात् जिस देव के बिना ज्ञानी, विद्वान् योगी का जीवन-यज्ञ सिद्ध नहीं होता उसी देव में उन ज्ञानियों को अपनी (धीनां, धिरिति कर्मनामसु पठितम्) बुद्धि एवं कर्मों का योग करना चाहिए। उस प्रियतम परमात्मस्वरूप इष्टदेव से पृथक अन्य कोई भी तत्व या संसारित्व के सम्बन्ध चिन्तनीय या द्रष्टव्य न रह जायें। परमानन्दस्वरूप सर्वात्मा परमात्मा ही वह देव है जो सर्वदा, सर्वथा योग योग्य है। अत: अनन्य प्रेम से परिपूर्ण हृदयवान् आत्मा आनन्दयुक्त होकर उसका साक्षात् अनुभव करने लगता है-

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानत:।

तत्र को मोह: क: शोक एकत्वमनुपश्यत:।। (यजु. 40.7)

जिस एक अधिष्ठान स्वरूप परमात्मा देव में समस्त चराचर जगत् अधिष्ठित है, ऐसा बोध प्राप्त करने वाले ज्ञानी योगी को उस समय क्या मोह और क्या शोक? ज्ञानवान् योगी का यही वह योग है जिसमें वह उस परमात्मदेव में तन्मय बना रहता है। वह सर्वेश्वर विश्व के अन्तर्बहि: सर्वत्र व्याप्त है-

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत:।। (यजु. 40.5)

द्युलोक, पृथिवीलोक व अन्तरिक्ष लोक में व्याप्त वह परमेश्वर (सूर्य) प्रकाशक है। स्थावर-जंगम जगत् की आत्मा है-

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।। (ऋक. 1.115.1, यजु 7.42., अथर्व 13.2)

सर्वव्यापक दिव्यतम उस परमपुरुष के गुणों के श्रवण से द्रवीभूत चित्तवृत्तियां धाराप्रवाहरूपेण जब उसकी ओर निरन्तर प्रवाहित होने लगती है तब योगी आत्मा परमात्मा में तल्लीन होने लगता है। ऋचा का कथन है-अग्निं विश्वा अभि पृक्ष: संचन्ते समुद्रं न स्रवत: सप्त यह्वी:। (ऋक् 1.71.7) जैसे गंगा, यमुना आदि विशाल सात नदियां सागर की ओर अग्रसर होती हुई उसी में विलीन हो जाती हैं वैसे ही योगी के मन की समस्त वृत्तियां प्रभु की ओर जाती हुई तदाकार होकर उसी में लीन हो जाती हैं।

इसी तथ्य को उपनिषत्कार इस प्रकार वर्णित करता है-यथा नद्य: स्यन्दमाना: समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्त: परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।। (मुण्डक उप. 3.2.8) अर्थात् जैसे अपने नाम रूप को त्यागकर नदियाँ बहती हुई आगे दौड़ती हुई समुद्र में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही नाम-रूप से रहित होकर योगी विद्वान् परात्पर परमपुरुष परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

''त्वमस्माकं तव स्मसि'' (ऋक्. 8.92.32)

हे प्रभो तू हमारा और हम तेरे हैं।

''त्वं त्राता तरणे चेत्यो भू: पिता माता सदमिन्मानुषाणाम्।''

(ऋक्. 6.1.5)

हे तारक भगवन्! आप हमारे त्राता=रक्षक हैं,

अत: चेत्य भी हैं, जानने योग्य हैं, सदा साथ रहने वाले सच्चे माता-पिता हैं।

''स न इन्द्र: शिव: सखा।''

(ऋक्. 8.9.3.3)

वह सर्वेश्वर ही हमारा कल्याणकर्ता मित्र है।

''त्वमग्ने इंद्रो वृषभ: सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्य:।।''

(ऋक्. 2.1.3)

अग्निस्वरूप प्रभो! आप सज्जनों की कामनाओं के पूरक हैं। आप ही स्तुत्य, प्रशंसनीय नमस्कार्य हैं।

''अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनव:।।'' (ऋक्. 7.32.22)

जैसे क्षुधार्त बछड़े अपनी माता को पुकारते हैं वैसे ही हम भी आपकी स्तुति करते हैं।

''इन्द्र: क्षेमे योगे हव्य इन्द्र:।''

(ऋक्. 10.29.10.)

इन्द्र परमात्मा ही हमारे योग व क्षेम के सम्पादन में समर्थ हैं। अत: वही हमारे आह्वान व आराधना के योग्य हैं।

''प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुहि।।''

(ऋक्. 8.103.10)

वह प्रभु समस्त प्रियों में सर्वप्रिय है। उसकी स्तुति कर। भावुक भक्त योगी उस सर्वान्तर्यामी अखण्डैकरस महासत्ता से मिलने को आतुर होकर कहने लगता है-

''कदा न्वन्तर्वरुणे भुवनानि कदा मृडीकं सुमना अभि ख्यम।''।। (ऋक्. 7.86.2)

हे वरुण प्रभो! कब मैं सुमन होकर आप आनन्दमय का साक्षात् दर्शन करूंगा? कब मैं आपमें तादात्म्यरूप हो सकूंगा?

योग द्वारा प्रभुप्राप्ति के मार्ग में प्रभु के नामस्मरण का भी बहुत महत्व है। 'तस्य वाचक: प्रणव:' योगसूत्र के अनुसार प्रणव ओंकार का नामस्मरण आत्मा-परमात्मा में निकटता सानिध्य को उत्पन्न करता है। इसलिए ऋग्वेदीय ऋचाओं में उल्लेख है-

''नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे।''

(ऋक्. 3.37.3)

अत: योगी भक्ति में आसक्त भक्त बनकर वैदिक ऋचा में प्रभुप्रार्थना करता है-

देव संस्फान सहस्रापोषस्येशिषे। तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवांस: स्याम (अथर्व. 6.79.3)

हे अभ्युदय: नि:श्रेयस सुख प्रदाता प्रभो! आप अगणित आध्यात्मिक, आधिभौतिक आदि पुष्टियों के एकमात्र स्वामी हैं। अत: उन पुष्टियों का दान हमको करो। उन्हें हम में स्थापित करो। हम उस प्रभु की भक्ति से युक्त हों। अभीष्ट पुष्टियों की उपलब्धि प्रभुभक्ति से संभव है, यह इस ऋचा से स्पष्ट होता है। अत: प्रभु से ही हम मित्रता करें-

यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीति:। (ऋक्. 8.68.11) परमात्मा की मित्रता मीठी होती है, उसकी प्रणीति अर्थात् अनन्यभक्ति भी मीठी होती है। अत: उसी की प्रणीति उसी से प्रणय, उसी से प्रीति व प्रेम हम करें।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितु: सर्वे।

स्वर्ग्याय शक्त्या।। (यजु. 11)

सर्वस्रष्टा परमात्मा की भक्ति रूप यज्ञ में संलग्न मन से परमानन्द की प्राप्ति हेतु हम शक्तिपूर्वक यत्न करें। अर्थात् हमारा मन सर्वदा परमेश्वर की आराधना में तल्लीन रहे। इस संलग्नता से व्यक्ति सीढ़ी दर सीढ़ी स्वर्लोक पर आरोहण कर लेता है।

पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्ष-मारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्।

दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्।।

(अथर्व. 4.14.3)

सिद्धि प्राप्त साधक योगी पृथिवी-अन्नमयं कोश से अन्तरिक्ष=प्राणमय कोश, तदनन्तर द्यौ = मनोमय कोश, तत्पश्चात् नाक, स्वर्ज्योति के प्रतीकों के माध्यम से विज्ञानमय कोश व आनन्दमय कोश तक पहुँचने लगता है।

इस अनुभूति को साधक योगी इसी अपने शरीर में ही करता है-

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पुरयोध्या।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

पितर कौन हैं, उनका श्राद्ध कैसे करें?

हिन्दु धर्म की मान्यता के अनुसार भाद्रपद मास की पूर्णिमा से लेकर आश्विन मास की अमावस्या तक पितृपक्ष अर्थात् श्राद्ध के रूप में अपने पितरों को याद किया जाता है। हिन्दु धर्म में ऐसी मान्यता है कि इन 16 दिनों में पितर अर्थात् मरे हुए पूर्वज पितृलोक से पृथ्वीलोक में आ जाते हैं। इन दिनों में पितरों को पिण्ड़दान तथा तिलांजलि देकर सन्तुष्ट करना चाहिए। इस मान्यता के अनुसार इन दिनों में अपने मरे हुए बाप-दादाओं के नाम पर ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है, जिससे उनकी तृप्ति हो सके। आर्य समाज की दृष्टि में श्राद्ध के विषय में क्या मान्यता है? पितर कौन हैं? उनका श्राद्ध किस प्रकार करें? इस विषय पर महर्षि दयानन्द की दृष्टि से विचार करते हैं-

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के 24 वें अध्याय में पञ्चमहायज्ञ की विषय वस्तु पर प्रकाश ड़ाला है। पञ्चमहायज्ञ के ऊपर विचार करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी तीसरे यज्ञ पितृयज्ञ के बारे में लिखते हैं कि- पितृयज्ञ के दो भेद हैं-एक तर्पण और दूसरा श्राद्ध। उनमें से जिस कर्म को करके विद्वान् रूप देव, ऋषि और पितरों को सुखयुक्त करते हैं, सो तर्पण कहलाता है तथा जो उन लोगों की श्रद्धापूर्वक सेवा करना है, उसी को श्राद्ध जानना चाहिए। यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जीते हुए जो प्रत्यक्ष हैं, उन्हीं में घटता है, मरे हुओं में नहीं। क्योंकि मृतकों का प्रत्यक्ष होना असम्भव है। इसलिए उनकी सेवा नहीं हो सकती तथा जो उनके लिए कोई पदार्थ देना चाहे, वह भी उनको नहीं मिल सकता। इससे केवल विद्यमानों की श्रद्धापूर्वक सेवा करने योग्य और सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध वेदों में कहा है। क्योंकि सेवा करने योग्य और सेवा करने वाले इन दोनों ही के प्रत्यक्ष होने से यह सब काम हो सकता है, दूसरे प्रकार से नहीं। इसलिए तर्पण आदि कर्म करने योग्य तीन हैं- देव, ऋषि और पितर। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी देव और मनुष्य के लक्षण बताते हुए कहते हैं कि- दो लक्षणों के पाए जाने से मनुष्यों की दो संज्ञा होती हैं, अर्थात् एक देव और दूसरे मनुष्य। उनमें भेद होने के सत्य और झूठ दो कारण हैं। जो कोई सत्यभाषण, सत्यस्वीकार और सत्यकर्म करते हैं वे देव तथा जो झूठ बोलते, झूठ मानते और झूठ कर्म करते हैं, मनुष्य कहाते हैं। इसलिए झूठ को छोड़कर सत्य को प्राप्त होना सबको उचित है। इस कारण से बुद्धिमान लोग निरन्तर ही सत्य कहें, मानें और करें। क्योंकि सत्यव्रत आचरण करने वाले जो देव हैं, वे तो कीर्तिमानों में भी कीर्तिमान होके सदा आनन्द में रहते हैं। परन्तु उनसे विपरीत चलने वाले मनुष्य दु:ख को प्राप्त होकर सब दिन पीड़ित ही रहते हैं। सत्यधारी विद्वान् ही देव कहलाते हैं।

जो सब विद्याओं को पढ़ के औरों को पढ़ाना है, यह ऋषिकर्म कहाता है और उससे जितना कि मनुष्यों पर ऋषियों का ऋण हो, उस सबकी निवृत्ति उनकी सेवा करने से होती है। इससे जो नित्य विद्यादान, ग्रहण और सेवाकर्म करना है, वही परस्पर आनन्दकारक है और यही व्यवहार अर्थात् विद्याकोष का रक्षक है। विद्या पढ़ के सभी को पढ़ाने वाले ऋषियों और देवों की प्रिय पदार्थों से सेवा करने वाला विद्वान् बहुत पराक्रमयुक्त होकर विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है। इससे आर्षेय अर्थात् ऋषिकर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी आगे लिखते हैं कि-घर का पिता वा स्वामी अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री और नौकरों को इस प्रकार आज्ञा देवें कि- जो जो हमारे मान्य पिता, पितामहादि, माता मातामहादि और आचार्य तथा इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग, जो अवस्था वा ज्ञान में बड़े और मान्य करने योग्य हैं, तुम लोग उनकी उत्तम-उत्तम जल, रोग नाश करने वाले उत्तम अन्न, सब प्रकार के उत्तम फलों के रस आदि पदार्थों से नित्य सेवा किया करो, जिससे कि वे प्रसन्न होके तुम लोगों को सदा विद्या देते रहें। क्योंकि ऐसा करने से तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहोगे और ऐसा विनय सदा रखो कि हे पूर्वोक्त पितर लोगों! आप हमारे अमृतरूप पदार्थों के भोगों से तृप्त हूजिए और हम लोग जो-जो पदार्थ आप लोगों की इच्छा के अनुकूल निवेदन कर सकें, उन-उन की आज्ञा दिया कीजिए। हम लोग मन, वचन और कर्म से आप के सुख करने में स्थित हैं। आप किसी प्रकार का दु:ख न पाईए। क्योंकि जैसे आप लोगों ने बाल्यावस्था और ब्रह्मचर्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है, वैसे ही हमको भी आप लोगों का प्रत्युपकार अवश्य करना चाहिए कि जिससे हम लोगों को कृतघ्नता दोष न प्राप्त हो।

पितृ शब्द से सब के रक्षक श्रेष्ठ स्वभाव वाले ज्ञानियों का ग्रहण है। क्योंकि जैसी रक्षा मनुष्यों की सुशिक्षा और विद्या से हो सकती है, वैसी किसी दूसरे प्रकार से नहीं। इसलिए जो विद्वान् लोग मनुष्यों को ज्ञानचक्षु देकर उनके अविद्यारूपी अन्धकार के नाश करने वाले हैं, उनको पितर कहते हैं। उनके सत्कार के लिए मनुष्यमात्र को ईश्वर की यह आज्ञा है कि वे उन आते हुए पितर लोगों को देखकर अभ्युत्थान अर्थात् उठ करके प्रीतिपूर्वक कहें कि- आईए! बैठिए! कुछ जलपान कीजिए और खाने पीने की आज्ञा दीजिए। पश्चात् जो-जो बातें उपदेश करने योग्य हैं, सो सो प्रीतिपूर्वक समझाईए कि जिससे हम लोग भी सत्यविद्यायुक्त होके सब मनुष्यों के पितर कहावें। परमात्मा से ऐसी प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर! आपके अनुग्रह से जो शीलस्वभाव और सबको सुख देने वाले विद्वान् लोग अग्नि नाम परमेश्वर और रूप गुणवाले भौतिक अग्नि की अलग-अलग करने वाली विद्युत् रूप विद्या को यथावत् जानने वाले हैं, वे इस विद्या और सेवा यज्ञ में अपनी शिक्षा विद्या के दान और प्रकाश से अत्यन्त हर्षित होके हमारी सदा रक्षा करें। उन विद्यार्थियों और सेवकों के लिए भी आज्ञा है कि जब जब वे आवें वा जावें, तब तब उनको उत्थान नमस्कार और प्रियवचन आदि से सन्तुष्ट रखें तथा फिर वे लोग भी अपने सत्यभाषण से निर्वैरता और अनुग्रह आदि सद्गुणों से युक्त होकर अन्य मनुष्यों को उसी मार्ग में चलावें और लोभादि रहित होकर परोपकार के अर्थ अपना सत्य व्यवहार रखें। इस भेद से विद्वानों के दो मार्ग होते हैं-एक देवयान और दूसरा पितृयान। अर्थात् जो विद्यामार्ग है वह देवयान और जो कर्मोपासना मार्ग है वह पितृयान कहाता है। सब लोग इन दोनों प्रकार के पुरूषार्थ को सदा करते रहें।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने पितृ यज्ञ के अन्तर्गत श्राद्ध और तर्पण पर प्रकाश ड़ाला है क्योंकि हिन्दु समाज में श्राद्ध और तर्पण के नाम से भोली भाली जनता को लूटा जाता है। श्राद्ध और तर्पण के नाम पर बहुत सा पाखण्ड़ फैला हुआ है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने लोगों को बताया कि श्राद्ध और तर्पण का वास्तविक स्वरूप क्या है? वर्तमान समय में भी श्राद्ध के नाम पर बहुत सी भ्रांतियां लोगों के मन में हैं। महर्षि दयानन्द जी के अनुसार केवल जीवित माता पिता का ही श्राद्ध हो सकता है। इसलिए हमें मन से इस भ्रांति को निकाल देना चाहिए कि मरे हुए पितरों के नाम पर भोजन कराने से उन्हें तृप्ति मिलेगी। यह पाखण्ड है जिसके नाम पर लोगों को लूटा जाता है। जीवित माता-पिता की श्रद्धापूर्वक सेवा करने से उनका आशीर्वाद मिलता है। इसलिए श्राद्ध के सही स्वरूप को समझकर माता-पिता, गुरू-आचार्यों, विद्वान् सन्यासियों, महात्माओं की सेवा करें और उनके द्वारा दिए जाने वाले उपदेशों को जीवन में धारण करें। यही श्राद्ध और तर्पण का वास्तविक स्वरूप है।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

संस्कार

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

(गतांक से आगे)

(4) जातकर्म संस्कार-बालक का जन्म होते ही इस संस्कार को करने का विधान है। नाल छेदन के बाद बालक को स्वर्ण की शलाका से अथवा अनामिका अंगुली से मधु तथा घृत मिलाकर चटाया जाता है। इसमें स्वर्ण त्रिदोष नाशक है। घृत आयु वर्धक तथा वात-पित्त नाशक है एवं मधु कफ नाशक है। इन तीनों का मिश्रण आयु, लावण्य और मेधा शक्ति को भी बढ़ाने वाला तथा पवित्रकारक होता है। बालक की जीभ पर 'ओ३म्' भी घी मिश्रित मधु से लिख देवे। फिर पिता उसके दक्षिण कान में 'वेदोऽसीति' तेरा गुप्त नाम वेद है। इस संस्कार में मां के स्तन को धोकर बालक को स्तनपान कराने का भी विधान है। पूरा संस्कार संस्कार विधि के अनुसार करे।

(5) नामकरण संस्कार-वह संस्कार जन्मदिन से दस रात्रि के बाद 11वें दिन या 100वें दिन अथवा एक वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद किया जाता है। इस संस्कार में ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शांति प्रकरण और सामान्य प्रकरण तथा सम्पूर्ण विधि करके आघारावाज्यभागाहुति चार, व्याहृति आहुति चार तथा संस्कार विधि में लिखित 'त्वन्नो अग्ने' आदि मंत्रों से आठ आहुतियां देवे। फिर बालक को शुद्ध जल से स्नान करा कर शुद्ध नवीन वस्त्र धारण करा कर उसकी माता कुण्ड के समीप बालक के पिता के पीछे से आकर दक्षिण भाग में होकर बालक का मस्तक उत्तर दिशा में रखकर बालक के पिता के पीछे से आकर दक्षिण भाग में होकर बालक का मस्तक उत्तर दिशा में रखकर बालक के पिता के हाथ में देवे और स्वयं पति के पीछे होकर उसके उत्तर भाग में बैठे। बालक के जन्म के समय की तिथि और नक्षत्र के देवता का नाम लेकर चार आहुतियां देवे अर्थात् एक तिथि दूसरी तिथि के देवता, तीसरी नक्षत्र के देवता का नाम लेकर चार आहुतियां देवे। फिर स्विष्टकृत मंत्र से एक आहुति देकर चार चार व्याहृति देवे फिर माता बालक को लेकर उत्तम आसन पर बैठे तथा बालक के पिता बालक के नासिका द्वार से निकलते वायु का स्पर्श करके निम्नलिखित मंत्र बोले-

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि।

यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम।

भूर्भुवस्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्यां सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।।

ओ३म् कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि।

आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ।।

असौ के स्थान पर बालक का नियत किया गया नाम बोले। फिर ओ३म् स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा... मंत्र बोले और उसके अन्त में असौ के स्थान पर बालक का नाम बोले फिर बालक को आशीर्वाद देवे।

(6) निष्क्रमण संस्कार-इस संस्कार में बालक को घर से जहां का वायु शुद्ध हो, स्थान शुद्ध हो, वहां का भ्रमण कराना होता है। निष्क्रमण संस्कार के काल के दो भेद है-एक बालक के जन्म के पश्चात् तीसरे शुक्ल पक्ष की तृतीयां और दूसरा चौथे महीने में जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो उस स्थिति में यह संस्कार करें। इस दिन बालक को सूर्योदय के पश्चात् शुद्ध जल से स्नान करा, सुन्दर वस्त्र पहनावे। फिर बालक की माता उसे लेकर यज्ञ शाला में पति के दक्षिण पार्श्व में होकर पति के सामने आकर बालक का मस्तक उत्तर में और छाती ऊपर रखकर पति के हाथ में देवे और पति के पीछे की ओर घूमकर बाएं पार्श्व में पूर्वाभिमुख बैठे।

ओ३म् यत्ते सुसीमे हृदयꣳहिम्मन्तः प्रजापतौ।

वेदाहं मन्ये तद् ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम्।।1।।

ओ३म् यत् पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्।

वेदामृतस्याहँ नाम माहं पौत्रमघꣳरिषम्।।2।।

ओ३म् इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापति।

यथायं न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि।।3।।

इन तीनों मंत्रों से परमात्मा की अराधना करके परमेश्वरोंपासना, स्वस्ति वाचन, शांति प्रकरण आदि और सामान्य प्रकरणोक्त समस्त विधि कर और पुत्र को देखकर निम्न तीन मंत्रों से पुत्र के शिर का स्पर्श करे-

ओ३म् अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधि जायसे।

आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्।।1।।

ओ३म् प्रजापतेष्ट्वा हिङ्करेणावजिघ्रामि।

सहस्त्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम्।।2।।

गवां त्वा हिङ्कारेणावजिघ्रामि।

सहस्त्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम्।।3।।

फिर निम्न मंत्र बालक के दक्षिण कान में जपे-

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजी-षिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः।

अस्मे शतꣳशरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्रशि-प्रिन्।।1।।

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहिचित्ति दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।

पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्व-मह्नाम्।।2।।

इस मंत्र को बाएं कान में जप कर पत्नी की गोद में उत्तर दिशा में शिर और दक्षिण दिशा में पग करके बालक को देवे और मौन करके स्त्री के शिर को स्पर्श करे। फिर आनन्द पूर्वक बालक को उठा कर सूर्य का दर्शन करावे और निम्न मंत्र को बोले-**ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳश्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात।**

इस मंत्र को बोल कर छोड़ा सा शुद्ध वायु में भ्रमण करा कर लावे। सब लोग-'त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः' वचन बोल कर आशीर्वाद देवे। फिर बालक के माता-पिता संस्कार में आये हुए स्त्री-पुरूषों को सत्कार कर विदा करें। रात्रि को चन्द्र दर्शन करावे।

(7) अन्नप्राशन संस्कार-यह संस्कार तब करावे जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे।

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम्।।1।।

घृतौदनं तेज कामः।।2।।

दधि मधु घृतमिश्रितमन्नं प्राशयेत्।।3।। आश्वलायन गृह्यसूत्र छठे महीने बालक को अन्न प्राशन करावे। जिसको तेजस्वी बालक बनाना हो वह घृत युक्त भात अथवा दही, शहद और घृत तीनों भात संस्कार विधि में भात के साथ मिला कर लिखित विधि से अन्न प्राशन करावे।

ओ३म् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।

प्र प्र दातारं तारिष ऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।

इस मंत्र को पढ़ कर थोड़ा-थोड़ा भात बालक के मुख में देवे। यथा रूचि खिला, बालक का मुख धो और अपने हाथ धोकर महावामदेव्यगान करके जो बालक के माता-पिता और अन्य वृद्ध स्त्री-पुरूष आये हों वे परमात्मा की प्रार्थना कर-'त्वमन्नपतिरन्नादो वर्धमानो भूयाः' कह कर बालक को आशीर्वाद देवे। फिर सत्कार करके सभी आगन्तुकों को विदा करें।

(8) चूड़ा कर्म संस्कार-तृतीय वर्षे चौलम्। आश्वलायन गृह्य सूत्र सांवत्सरिकस्य चूड़ा करणम्। पारस्कर गृह्य सूत्र चूड़ा कर्म संस्कार बालक के जन्म से एक वर्ष अथवा तीसरे वर्ष में करना है।

उत्तरायण काल में जिस दिन आनन्द-मंगल हो उस दिन यह संस्कार करे। संस्कार विधि में लिखित विधि के अनुसार बालक के केश छेदन करें। सावधानी और कोमल हाथ से और करें, बालक के शिर में लगने न पावे। अन्त में महावामदेव्यगान करके योग्य सत्कार के बाद आगन्तुकों के विदा करें। विदा से पूर्व बालक को आशीर्वाद देवें-ओ३म् त्वं जीव शरदः। शतं वर्धमानः।

(9) कर्ण वेध संस्कार-कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा। आश्व. गृ.सू.

बालक के कर्ण वेध या नासिका वेध का समय जन्म से तीसरे वां पांचवे वर्ष का उचित है। जिस दिन संस्कार करना हो उस दिन बालक को प्रातः काल शुद्ध जल से स्नान करा और शुद्ध वस्त्रालंकार धारण कराकर बालक की माता यज्ञशाला में आवे और सामान्य यज्ञ करके-

ओम् भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्ये माक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरै रङ्गै स्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभिर्व्य शेमहि देवहितं यदायुः।।

मंत्र को पढ़ कर सद्वैद्य के हाथ से कर्ण वा नासिका वेध करावे।

पूर्वोक्त मंत्र से दक्षिण कान और **ओम् वक्ष्यन्ती वेदा गनीगन्ति कर्ण प्रियꣳ सखायं परि षस्वजाना।**

योषेव शिङक्ते वितताधि धन्वज्या इसꣳ समने पायन्ती।

मंत्र सो पढ़ कर वाम कर्ण का वेध करे। फिर वैद्य उन छिद्रों में शलाका रखें कि जिससे छिद्र पूर न जावें। ऐसी ओषधि इन पर लगावे जिससे कान पके नहीं।

(10) उपनयन संस्कार-अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्।।1।। गर्भाष्टमेव।।2।। एकादशे क्षत्रियम्।।3।। द्वादेशे वैश्यम्।।4।। आषोडशाद् ब्राह्मणस्यानतीतः कालः।।5।। आद्वाविंशात् क्षत्रियस्य, आचतुर्विशाद् वैशस्य, अत ऊर्ध्व पतित सावित्री का भवन्ति।।6।।

(क्रमशः)

प्राणी जगत् में सर्वोत्तम मनुष्य

ले.-आचार्य देवेन्द्र प्रसाद शास्त्री ''सुवित्रेय'' आर्य समाज मंदिर स्वामी श्रद्धानंद पथ, रांची

(गतांक से आगे)

अपना वायु मूलाधार चक्र में है। इसका कार्यक्षेत्र गुदा से नाभि तक है। यह अधोगामी वायु है। यह नाभि के अधोभाग से पैरों तक गमन करता है। इसका प्रमुख कार्य है-''आँतों में गंदगी को जमा नहीं होने देना, मलमूत्र को समय पर नीचे गिराना, गर्भाशय से गर्भ को बाहर फेंकनादि।'' जब यह वायु दूषित या कुपित हो जाता है, तब प्राणी हैजा, पेंचिश, दस्तादि से पीड़ित हो जाता है। जो श्वास अन्दर आता है, उसे ही 'अपान' (Inspire) कहते हैं।

नाभि में समान वायु है। यह समता को प्राप्त कराने वाला वायु है। नाभि केन्द्र में प्राण एवं अपान वायु की समानता बनाये रखना इसका काम है। इस प्राण की समता से प्राणियों में अन्नादि खाद्य पदार्थ पचते रहते हैं। उनका पाचन होता है। श्रीमद्भगवतगीता (15/14) में भी योगेश्वर श्रीकृष्ण की उद्घोषणा है: ''अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रित:। प्राणाऽपान समायुक्ता पचाम्यन्न चतुर्विधम्।।''

कण्ठ में (विशुद्ध चक्र में) उदान प्राण है। यह कण्ठ से सिर पर्यन्त पूरित है। ऊर्ध्वगमन से उदान कहलाता है। वमनादि को ऊपर आने देना, शब्दों को स्पष्टता देना, गानों के स्वरों को व्यक्त करना आदि इसका प्रमुख कार्य है। व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। यह रक्त एवं ज्ञान का सब देह में संचार करता है। अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी नाड़ियों का संचालन करती है। नाग वायु भी कण्ठ में ही है। यह भोजन पच जाने पर डकार लाता है, कूदने में मदद करता है। कुर्म वायु नेत्र में है। नेत्रादि के पलक झपकने और सिकुड़ने की क्रिया इसी का परिणाम है। धनञ्जय वायु सारे शरीर में व्याप्त है। देह त्याग के बाद शरीर को फुलाना, सड़ानादि इसी का काम है। निद्रा वा आलस्य की क्रिया का संचालन करना भी इसी वायु का कार्य है। यह बहुत ही मूल्यवान प्राण है। इसी प्राण की शक्ति जीवित अवस्था में विद्युत-चुम्बकीय शक्ति के रूप में परिवर्त्तित होकर ज्ञान-तन्तु समूह में काम करती है और ब्रह्माण्डीय वातावरण में तैरते हुए तमाम लोक-लोकान्तरों के विचारों को आकर्षित करती है। इसी प्राण के द्वारा योगीजन बाह्य जगत् के विचारों को पकड़ते हैं। यही प्राण हमारे भावों, विचारों, भावनाओं और तमाम इच्छाओं को भी ब्रह्माण्ड में बराबर विकसित करते रहता है। विकीर्ण हुए हमारे विचार, भावना, इच्छा, ब्रह्माण्डीय ऊर्जा में मिलकर अनन्त काल तक ब्रह्माण्ड में बनी रहती है। शरीर के बाहर भी यह प्राण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विशेष तौर पर समान रूप से विद्यमान है। विज्ञान वेत्ता ब्रह्माण्ड में समान रूप से विद्यमान इस वायु को 'ईश्वर' कहते हैं। 'ईश्वर' सर्वत्र है और वह समान रूप से विद्यमान है। वह समय और स्थान से मुक्त है। उस पर देश और काल का प्रभाव नहीं पड़ता है। गीता (10/22) में श्रीकृष्ण का कथन है-''भूतानामस्मि चेतना'' अर्थात् मैं प्राणों में श्रेष्ठ धनञ्जय प्राण हूँ।

धनजंय और प्राण वायु हमारी आत्मशक्ति को प्रगट करता है। मन बुद्धि और अहंकार को संचालित करने में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कृकस वायु नाक में है। छींक लाना इसी का काम है। मुँह में देवदत्त वायु है। जम्हाई लाना, भूख-प्यास की क्रिया का नियमन करना इसी का परिणाम है। इन प्राणों का आत्मा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जागृत अवस्था में ये सभी प्राण समवेत शक्तियों के साथ आँखों में रहते हैं। जब आत्मा सूक्ष्म शरीर के द्वारा स्थूल शरीर से बाहर निकल जाती है, तब ब्रह्माण्डीय धनंजय प्राण शरीर को सड़ा-गला कर अपने आप ब्रह्माण्ड के वायु में विलीन कर लेते हैं। विशेषत: मुर्दे के अर्धलघुमस्तिष्क केन्द्र में यह मरणोपरान्त भी एकत्रित ही रहता है। यही कारण है जो हिन्दुओं में दाह संस्कार के समय 'कपाली-क्रिया' की जाती थी। इन दस वायुओं को पंच-प्राण एवं पंच महाप्राण की भी संज्ञा प्राप्त है। इनकी एक संज्ञा 'रूद्र' भी है।

ये शरीर और ब्रह्माण्ड में समान रूप से हैं। इन दस रूद्रों के कारण ही शरीर की सत्ता मौजूद है। शरीर में पंच-प्राणों और पंच-महाप्राणों की समानता के कारण ही जीवन के लक्षण दृष्टिगोचर होते रहते हैं। इन प्राणों की विषमता ईश्वरीय आदेश पर निर्भर हुआ करता है। इसीलिए 'हरिवंश पुराण' और 'महाभारत' में कहा गया है कि एकादश रूद्रों का एक ही परम-पिता-परमात्मा है जो इनसे अलग होते हुए भी तीनों लोकों में सर्वत्र विद्यमान है। मूल रूप में 'पुराण' और 'महाभारत' के श्लोक निम्नलिखित हैं-

''हरश्च बहुरूपश्च त्रयम्ब-कश्चऽपराजित:। वृषाकपिश्च कपर्दी रैवतस्तथा।। मृगण्याधश्च शर्वश्च कपाली च विशांपते। एकादशैकतैक पिता रूद्रास्त्रि-भुवनेश्वर:।।''

जब ये प्राण शरीर को छोड़कर निकल जाते हैं, तब बन्धु-बान्धव रोने लग जाते हैं। अपनी इन्द्रियों से दुष्कर्म करने पर यही रूद्र प्राणियों को रूलाते हैं। दुष्टों को दुष्कर्मों के फलस्वरूप जब प्राण रूलाने लग जाते हैं, तब उस महाशक्ति का नाम रूद्र हो जाता है। यद्रोदति तद् रूद्र:) रूद्र के सम्बन्ध में गीता (10/23) का कथन है:-''रूद्राणां शंकराश्चास्मि'' रूद्रों में कल्याण करने वाला मैं शंकर हूँ।

मानव शरीर के महत्व पर प्रकाश डालते हुए यजुर्वेद (34/55) में कहा गया है-''सप्त ऋषय: प्रतिहिता: शरीरे सप्त रक्षनिन्त सदमप्रमादम्। सप्ताप: स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्प्नजौ सत्रसदौ च देवौ।।'' अर्थात् सात ऋषि सो जाने पर शरीर की रक्षा करते-रहते हैं। अत: शरीर माया जाल नहीं है। इसी मानव देह से होकर परमधाम पहुँचना है। इसलिये शरीर के बारे में जानना, समझना और स्वस्थ एवं सुरक्षित रखना प्रत्येक मनुष्य का परमधर्म है, क्योंकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्धि का साधन नीरोगी काया है। किसी ने ठीक ही कहा है-''धर्मार्थ काम मोक्षाणाम् आरोग्यं मूलोत्तमं।'' ''पहला सुख निरोगी काया, दूजा सुख हो घर में माया। तीजा सुख विद्या धनकारी, चौथा सुख सुत आज्ञाकारी।।''

जो व्यक्ति इस दैवी वीणा को बजाना सीख गया है, वह इस शरीर रूपी मन्दिर से ऐसे दिव्य स्वर झंकृत करते हैं कि जड़-चेतन, चराचर जगत् नृत्य कर उठते हैं। वैदिक और औपनिषदिक मान्यतानुसार इसी शरीर रूपी 'ब्रह्मपुर' में एक गुहा है, जिसे परमात्मा और भक्तात्मा का 'मिलन स्थल' कहा जाता है, परन्तु श्रीमद्भगवगीता (18/61) में 'ब्रह्मपुर' के स्थान पर 'हृदय' कहा गया है। गीता में श्रीकृष्ण का कथन है:-''ईश्वर: सर्व भूतानां हृदयेशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्व भूतानि यन्त्रारूढ़ानिमायया।।''

शरीर वह रथ है, जिस पर बैठ कर यह आत्मारूपी रथी, बुद्धि रूपी सारथी द्वारा मन की लगाम से संसार यात्रा को प्रसन्नतापूर्वक पूरा करता है। आत्मा शरीर रूपी रथ का स्वामी है। इसका तात्पर्य यह है कि यह शरीर रथ है। बुद्धि सारथी है। मन इसके लगाम है। इन्द्रियाँ रथ में जुते हुए घोड़े हैं। विषय-वासनायें इन इन्द्रिय रूपी घोड़ों को विचरने का स्थान है। शरीर, इन्द्रियाँ और मन इन सबके साथ जीवात्मा ही भोगों को भोक्ता है। इस शरीर का भोक्ता तभी सुकर्म के पथ पर अग्रसरित होता है, जब इसे शुद्ध और युक्त आहार तथा जल दिया जाता है। जब युक्त-आहार, विहार किया जाता है, तब व्यक्ति के मन के लगाम 'मोक्ष' की ओर ले जाता है। क्योंकि मन ही 'मोक्ष और बंधन' के कारण हैं:-''मन: एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।'' यही कारण है जो आज भी लोकोक्ति के रूप में विख्यात है:-''जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन। जैसा पीये पानी वैसी निकले वाणी।।'' श्रीमद्भगवतगीता (6/17) भी 'तो स्वस्थ बने रहने हेतु कहती है':-''युक्ताहार विहारस्य सुकृचेष्टस्य कर्मसु युक्तस्वप्ना-वषोधस्य योगो भवति दु:खहा।।'' इत्यादि।

हमारे शरीर और ब्रह्माण्ड के तत्वों में समानता पायी जाती है। यह धातुओं से मिला हुआ जगत् है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और अव्यक्त ब्रह्म इन छहों से सम्मिलित जहाँ मूर्त्तिमान जगत् है, तो वहीं शरीर में पञ्चभूत और छठा आत्मा है। जैसे जगत् में पृथ्वी देखने में आती है, वैसे ही पुरूष का शरीर दिखलाई देने वाला है। जगत् में एक और जहाँ जल का प्रभाव है, तो वहीं पुरूष में भी क्लेदरूप जल है। जगत् में अग्नि है, तो शरीर में जठराग्नि है। जगत् में पूर्व-पश्चिम को वायु गमन करती है। मनुष्य में प्राण अपान का गमन है। जहाँ संसार में आकाश है, वहीं शरीर में 'छिद्र समूह रूपी आकाश है। मूर्त्तिमान् जगत् का प्रकाशक ब्रह्म है, तो शरीर में जीवात्मा है। इस प्रकार इन दोनों में बराबर धाराएँ देखी जाती है।

(क्रमश:)

परमात्मा-जीवात्मा-देवात्मा-महात्मा का ऋत सत्य

ले.-उम्मेद सिंह विशारद वैदिक प्रचारक

युग पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती जी वैदिक ऋचाओं के सत्यार्थ बतलाने वाले और वैचारिक क्रान्ति का संगठन आर्य समाज के संस्थापक थे। उन्होंने सम्पूर्ण विश्व के लोगों को एक सूत्र में बांधने के लिये आर्य समाज के दस नियम ऐसे बनाये कि संसार में कोई भी किसी भी कथित धार्मिक मत को मानने वाला हो वह सभी के लिये हितकारी है।

परमात्मा के बारे में दूसरा नियम देखिये कितना परमात्मा के ऋत गुण व सृष्टिक्रम के अनुकूल बनाया है। ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

इस विशाल सृष्टि में पृथ्वी, चाँद, तारे, सूर्य अनवरत गति कर रहे है। हर चीज घूम रही है, इसमें कोई शक्तिधारा बह रही है, हर परमाणु नियम से बंधा हुआ है। प्रत्येक वस्तु नियम से व नियमित गतिशील है। सृष्टि की गति व रचना का अर्थ है, सृष्टि का विकास व विनाश नियम वध हो रहा है। परिवर्तन हो रहा है। यही चेतन शक्ति प्राणी जगत में उदबुद्ध हो रही है। परन्तु प्राणी जगत की सर्जनात्मक चेतन शक्ति तथा जड़ एवं वृक्षादि में वर्तमान चेतन शक्ति में भेद है। प्राणी में वैयक्तिक चेतना तथा विश्व चेतना दोनों हैं। इनमें वैयक्तिक चेतना आत्मा कहलाती है और विश्व चेतना परमात्मा कहलाती है। आत्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है और कर्म फल भोगने में परतन्त्र है। परमात्मा जड़ चेतन सब में मौजूद है, परन्तु वह कर्म बन्धन में नहीं बंधता है।

परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य और उसके कारण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं है, न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अन्त किया है, वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती है। जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय न कर सकता, इसलिये वह ''विभु'' तथापि चेतन होने से उसमें क्रिया भी है।

हम आर्य समाज के दूसरे नियम में ऊपर कह चुके है कि परमात्मा सच्चिदानन्द है। सत अर्थात् यथाथर्ता/चित चेतन, और महाचेतना का तीसरा विशिष्ट गुण है आनन्द। परमात्मा के नेत्र सब जगह है वह सब कुछ देख रहा है, उसका मुख सब जगह है, परमाणु-परमाणु में उसके दर्शन होते है, उसकी भुजायें सब जगह है, जहाँ चाहे उसकी अंगुली पकड़ सकते हो, उसके पांव सब जगह है, कौन सी जगह है जहाँ वह नहीं पहुँच सकता। वह परमात्मा अंगुष्ट मात्र आत्मा के भीतर सदा मनुष्यों के हृदय में सन्निविष्ट है। हृदय, मन व बुद्धि से उसका आभास होता है। वह अणु से अणु है, महान से महान है, वह कर्म नहीं करता अक्रतु है, उस परमात्मा की महिमा को उसकी कृपा से ही उसका अहसास करते है और परमात्मा द्वारा रचित सृष्टि में उसकी कृति का अवलोकन करते है।

जीवात्मा

जीवात्मा तथा बह्मं का प्रथम वाद वह स्थान है जिसे हम शरीर और प्रकृति की जागृतवस्था कहते है। जागृतवस्था में चेतना भीतर से निकल कर जागृत स्थान में आ जाती है। जीव की चेतना शरीर में और ब्रह्मं की चेतना विश्व में प्रत्यक्ष रूप से आ बैठती है। जागृतवस्था में जीव के लिये शरीर और ब्रह्मं के लिये प्रकृति ही उसका स्थान है। मानो उस ब्रह्मं जीव की तरह अन्दर से आ बैठता है। उस अवस्था में जीव अपना कार्य क्षेत्र शरीर में बना लेता है, और ब्रह्मं इस विशाल प्रकृति को/जहाँ हम शरीर में जीवात्मा को पा लेगें और प्रकृति में ब्रह्मं को/शरीर जागृतवस्था में तभी आता है जब जीवात्मा जागृत स्थान पर आ बैठता है। तब शरीर की ओर हटा देने से ही जीवात्मा नजर आ जाता है। जैसे जीवात्मा के जागृत स्थान में आ बैठने से सिर, आँख, कान, वाणी, फेफड़े, हृदय तथा पांव ये सात अंग हैं, वैसे ब्रह्म के विकसित सृष्टि के रूप में प्रकट होने पर अग्नि सिर है, सूर्य चन्द्र आँखें है, दिशायें कान है, वेद वाणी है, वायु फेफड़े है, विश्व हृदय है, पृथ्वी पांव है। जीवात्मा की तरह ब्रह्मं के भी ये सात अंग है। अंगों का काम संसार का भोग करना है। भोग का प्रतिनिधि मुख है। जीवात्मा के पास भोग के 19 साधन है। 3 मुख है, जिनसे यह संसार भोगता है। 5 ज्ञानेन्द्रियां + 5 कर्मेन्द्रियां + 5 प्राण + 4 अन्तकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) ये 19 मुख है, जिनमें ये संसार का भोग करता है और ब्रह्मं भी संसार के सम्पूर्ण प्राणियों के इन 19 मुखों से जागृत स्थान में बैठ कर बहिप्रज्ञावस्था में जीवात्मा की तरह इन प्राणियों द्वारा स्थूल-संसार का भोग कर रहा है। इसलिये वह भी स्थूल-भुक है। जागृतस्थान पर बैठा हुआ जीवात्मा विश्व के व्यष्टि-रुप अर्थात् एक-एक व्यक्ति रूप नर-नारी के रूप में है, इसलिये जीवात्मा की यह अवस्था वैश्वानर कहलाती है। अत: ब्रह्मं की इस अवस्था को भी वैश्वानर ही कहा जाता है। (माण्डूक्योपनिषद्)

जीवात्मा न स्त्री लिंग है, न पुल्लिंग न नपुंसक लिंग है, ये लिंग शरीर के है। जिसे-जिसे शरीर को यह ग्रहण करता है उस-उस के लिंग के साथ युक्त हो जाता है।

जड़ देवता एवं चेतन देवात्मा

ब्राह्मणग्रन्थों में वेद मन्त्रों का व्याख्यान लिखा है (त्रयस्त्रिशत) अर्थात् व्यवहार के ये (33) देवता है। आठ वसु ये है-अग्नि-पृथ्वी-वायु-अन्तरिक्ष-आदित्य-द्यौ-चन्द्रमा-और नक्षत्र है। इनका नाम वसु इस कारण से है कि सब पदार्थ इन्ही में बसते है, और ये ही सबके निवास करने के स्थान है। ये जड़ देवता है।

11. रुद्र ये कहलाते हैं-ग्यारह रुद्रों में शरीर में दश प्राण है, अर्थात् प्राण-अपान-व्यान-समान-उदान-कूर्म-कृकल-देवदत्त, धनन्जय और ग्यारहवां जीवात्मा है। क्योंकि जब ये शरीर से निकल जाते है, तब मरण होने से उसके सम्बन्धी लोग रोते है। वे निकलते हुये उनको रुलाते है, इससे उनका नाम रुद्र है।

इसी प्रकार आदित्य बारह महीनों को कहते है क्योंकि वे सब जगत के पदार्थों का आदान अर्थात् सबकी आयु को ग्रहण करते चले जाते है इसी से इनका नाम आदित्य है। ऐसे ही इन्द्र नाम बिजुली का है, क्योंकि वह उत्तम ऐश्वर्य की विद्या का मुख्य हेतु है और यज्ञ को प्रजापति इसलिये कहते है कि उससे वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा प्रजा का पालन होता है। ये सब मिलके अपने-अपने दिव्य गुणों से तैंतीस देव कहलाते है और तीन देव-स्थान-नाम और जन्म को कहते है। दो देव अन्न और प्राण को कहते है। अध्यर्धदेव अर्थात् जिससे सबका धारण और वृद्धि होती है जो सूत्रात्मा वायु सब जगह से भरा रहा है, उसको अध्यर्धदेव कहते हैं, इसमें कोई भी उपासना योग्य नहीं है योग्य तो केवल एक ब्रह्मं ही है।

इस देवता विषय में दो प्रकार का भेद है। एक मूर्तिमान और दूसरा अमूर्तिमान। जैसे माता-पिता, आचार्य, अतिथि ये चार तो मूर्तिमान देवता है, और पांचवा परब्रह्मं अमूर्तिमान है, अर्थात् उसकी किसी प्रकार की मूर्ति नहीं है। इस प्रकार से पांच देव की पूजा में यह दो प्रकार के भेद जानना उचित है।

इसी प्रकार पूर्वोक्त आठ वसुओं में से अग्नि, पृथ्वी, आदित्य, चन्द्रमा और नक्षत्र ये पांच मूर्तिमान देव है और ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, मन, अन्तरिक्ष, वायु द्यौ और मंत्र ये मूर्तिरहित देव है तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां विजुलि और निवधि यज्ञ से सब देव मूर्तिमान और अमूर्तिमान है। इससे साकार और निराकार भेद से दो प्रकार की व्यवस्था देवताओं में जाननी चाहिए। उपासना करने योग्य एक परमेश्वर ही देव है। (ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका से देवता विषय)

महात्मा-देवात्मा

महात्मा वह है जिसके सामान्य शरीर में असामान्य आत्मा निवास करती है। काया की वेशभूषा का और विचित्र आवरणों का धारण महात्मा होने के आधार व लक्षण नहीं है। सामान्य वेशभूषा रहन-सहन में आत्मा को महानता के स्तर तक पहुँचाना है। महात्मा का अर्थ है विशाल व्यापक आत्मा जो अपने शारीरिक, मानसिक और पारिवारिक कर्तव्यों से आगे बढ़कर विश्व मानव के उत्तरदायित्वों का वहन करने के लिये अग्रसर होता है। महात्मा अपने लिये नहीं सोचता विराट के लिये सोचता है। अपने लिये जीवित नहीं रहता, परहित हेतु जीता है और संसार को ईश्वरीय ज्ञान वेदानुसार सृष्टिक्रमानुसार, धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का कार्य बताता है। देवात्मा वह होता है जो निम्न गुणों से जनता का मार्ग दर्शन करता है जैसे:

1. सोमसद:-सोमयज्ञ, सोम-वल्लो औषधियों के विद्या में निपुण होते है।
2. अग्निष्वात:-जो ईश्वर भौतिक अग्रि और विद्युदादि पदार्थों के गुण जानने वाले होते है।
3. बर्हिषद:-जो सबसे उत्तम परब्रह्मं में स्थिर होकर सत्य विद्या उत्तम गुणों में स्थिर है।
4. सोमपा:-जो ऐश्वर्य के रक्षक और सोम महोषधि रस पान कराकर नजता के रोग हरते है।
5. हविर्भुज:-जो नित्य अग्निहोत्र करके वायु व वृष्टिजल द्वारा जगत का उपकार करते है।
6. आज्यया:-जो विविध ज्ञान विज्ञानरुप सार भूत विद्या के अध्ययन व अध्यापन करते है।
7. सुकालिन:-जो ईश्वर, धर्म और सत्यविद्या वेदों के उपदेश में जिनका समय व्यतीत होता है।
8. यमराजा:-जो पक्षपात छोड़ कर सदा दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों के न्यायकारी है।

ये सब वशिष्ट देवात्मा की श्रेणी में आते हैं।

पृष्ठ 2 का शेष-वैदिक वाड्मय में योगविद्या

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।। (अथर्व. 10.2.31)

आठ चक्रों व नवद्वारों वाली इस देहपुरी में एक अपराजेय देवनगरी है। उसमें अग्नितुल्य परिपूर्ण व आनन्दमय है। और ये ज्योति आत्मा व परमात्मारूप हैं। इसलिए ऋग्वेद में कथन है-

हे शतक्रतो इन्द्र अनन्तज्ञाननिधि भगवन्। हम परा, पश्यन्ती, मध्यमा व वैखरी नामक चारों वाणियों के माध्यम से पूर्ण श्रद्धा के साथ आपके विभिन्न नामों का उच्चारण करते हैं।

"मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे।" (ऋक्. 8.11.5)

भगवन्। अविनाशी अक्षरस्वरूप आपके महिमापूर्ण नाम का हम भक्ति के साथ जप व संकीर्तन करते हैं।

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।

भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः।। (अथर्व. 11.2.16)

उस ब्रह्म को सायं, प्रातः रात्रि व दिन में नमस्कार हो। उस स्रष्टा पालयिता व संहर्त्ता को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।

यह तो मात्र विडम्बना ही है कि वह सर्वेश्वर सर्वान्तर्यामी रूपेण सबमें विद्यमान है। परन्तु उसे लोग नहीं जानते जैसे कुहरे के घनान्धकार में निकटस्थ वस्तु भी पहचान में नहीं आती वैसे ही अज्ञानान्धकार से आवृत्त प्राणियों के हृदय में विद्यमान वह प्रभु भी प्रतीत नहीं हो पाता। इस तथ्य को इस ऋचा में स्पष्ट किया गया है-

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चाऽसुतृपउक्थशासश्चरन्ति।।
(ऋक्. 10.82.7)

परमात्मा की प्राप्ति के लिए उपनिषदों में भी भिन्न-भिन्न दृष्टान्त, उदाहरण, रूपक तथा विधि-निषेधात्मक विविध वाक्यों के कथन के माध्यम से विभिन्न साधन बताये गये है। उसमें से किसी एक साधन को अपनाकर परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती हैं। उपासना उन साधनों में एक अन्यतम उपाय है। उपासना का अर्थ है निकट बैठना, पास में स्थित होना। अतः दुःखपूर्ण संसार-सागर से पार होने के लिए उस परमसत्ता की उपासना अनिवार्य है। इसलिए यमाचार्य ने नचिकेता को कहा है-

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम।

एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।। (कठ. 1.2.17)

यही परमात्मा उत्तम आलम्बन=सहारा है, यही अन्तिम आश्रय है। इस तथ्य को भलीभांति जानकर योगी ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है।

इस सम्बन्ध में कुछ अन्य उद्धारण भी द्रष्टव्य हैं-

-समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।

जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।

-यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।

तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति।।

(मुण्डक. 3.132-3)

-तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति।।

-सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकररूपम्।

विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।।

(श्वेताश्वतर 4.11.14)

-तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वत् नेतरेषाम्।।

(श्वेताश्वतर, 6.12)

इस प्रकार उपासना से आत्मा परमात्मा को प्राप्त करता है। योगी की साधना, तपस्या व श्रद्धा से अभिभूत भगवान् की भक्तों के प्रति वात्सल्य के भाव का विविध दृष्टान्तों के साथ वर्णन ऋग्वेद में इस प्रकार प्राप्त होता है-

गावं इव ग्रामं युयुधिरिवावान्
वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु
धर्ता दिवः सविता विश्ववारः।।
(ऋक् 10.149.4)

अर्थात् जैसे ग्राम की ओर गौएं शीघ्र आती हैं, जैसे योद्धा अश्व पर सद्यः आरूढ़ होते हैं, जैसे स्नेह व दुग्धपूरित गायें बछड़ों की ओर शीघ्रता करती हैं तथा जैसे पति पत्नी से मिलन के लिए तत्पर होते हैं वैसे ही वह विश्वरणीय, सविता, धर्ता प्रभु भक्तों व योगियों के समीप शीघ्र प्राप्त होता है।

इस प्रकार वैदिक ऋचाओं में व तत्सम्बन्धित वाङ्मय में योगविद्या से सम्बन्धित अनेक विचार उपलब्ध होते हैं।

पृष्ठ 8 का शेष-गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में

इससे पूर्व कार्यक्रम का शुभारम्भ विश्वविद्यालय की यज्ञशाला में यज्ञ करके हुआ। यज्ञ के ब्रह्मा प्रो. सोमदेव शतांशु और मुख्य यजमान विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डा. सत्यपाल सिंह और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती अलका सिंह रहीं। इसके साथ ही आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, दिल्ली एवं हरियाणा के प्रधान और महामंत्री के साथ सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान और महामंत्री यज्ञशाला में यजमान के रूप में उपस्थित हुये। यज्ञशाला के उपरान्त कुलाधिपति डा. सत्यपाल सिंह ने कुलपति कार्यालय के प्रांगण में ध्वजारोहण किया। इसी क्रम में कुलाधिपति डा. सत्यपाल सिंह ने वेद भवन का शिलान्यास किया। इसके बाद सभी मुख्य अतिथि के रूप में विश्वविद्यालय सभागार के प्रांगण में पहुंच कर समारोह का उद्घाटन दीप प्रज्वलित कर किया। इस दौरान तीनों सभाओं के सभी प्रतिनिधि उपस्थित रहे। सबसे प्रमुख आकर्षण का केन्द्र एम.डी.एच. मसाले के चेयरमैन महाशय धर्मपाल रहे। इसके साथ आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उप प्रधान चौधरी ऋषिपाल सिंह जी एडवोकेट एवं रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट भी उपस्थित थे।

कार्यक्रम का संचालन प्रो. एम.आर. वर्मा ने किया। समारोह में प्रो. अम्बुज शर्मा के निर्देशन में छात्र छात्राओं द्वारा एक मोहक एवं भव्य सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया। कार्यक्रम के दौरान प्रो. वी.के. सिंह, प्रो. श्रवण कुमार शर्मा, प्रो.एस.के. श्रीवास्तव, प्रो. ईश्वर भारद्वाज, प्रो.आर.सी. दुबे, प्रो. डी.के.माहेश्वरी, प्रो. वी.के. शर्मा, प्रो. कर्मजीत भाटिया, प्रो.नवनीत, प्रो. रामकुमार डागर, प्रो.प्रभात कुमार, प्रो.एल.के. पुरोहित, प्रो. नमिता जोशी, प्रो. सुचित्रा मलिक, प्रो. श्यामलता जुयाल, डा. निपुर, पूर्व विधायक अम्बरीश, रानीपुर विधायक आदेश चौहान, डा. अजीत तोमर, डा. ऊधम सिंह, डा. विपिन शर्मा, डा. विपुल भट्ट, डा. अजय मलिक, डा. आर.के. शुक्ला, संयुक्त कुलसचिव देवेन्द्र कुमार, डा. पंकज कौशिक, विजेन्द्र सिंह, दिनेश कुमार, दीपक वर्मा, प्रमोद, शशिकांत, कुलभूषण शर्मा, दीपक आनन्द, सेठपाल, कुलदीप, रणजीत शर्मा, सत्यदेव, प्रकाश चंद तिवारी आदि उपस्थित रहे।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी मनाई

आर्य समाज मन्दिर कमालपुर होशियारपुर में दिनांक 25.8.2019 (रविवार) को एक विशेष हवन यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें श्री कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर योगेश्वर श्री कृष्ण जी को नमन किया गया। प्रधान प्रो. नवल किशोर शर्मा और सचिव प्रो. यशपाल वालिया ने यज्ञमान पद को सुशोभित किया। गुरुकुल करतारपुर से आये चार विद्यार्थियों ने वैदिक रीति से मन्त्र उच्चारण करते हुए यज्ञ को सम्पन्न करवाया। नगर से पधारे आर्यजनों ने बढ़ चढ़ कर आहुतियां डालीं। तत्पश्चात् दयानन्द हाल में कार्यक्रम चला। मंच का संचालन सचिव श्री यश वालिया ने किया। गुरुकुल से विद्यार्थियों ने सुन्दर भजन गाकर समय बांधा। श्रीमती उपासना बहल ने भी प्रभु भक्ति का भजन गा कर मन्त्रमुग्ध कर दिया। आचार्य जी ने अपने मुख्य उदबोधन में योगेश्वर श्री कृष्ण जी को नमन करते हुए कहा कि सुप्रसिद्ध पुस्तक "महाभारत" में कहीं भी श्री कृष्ण के बाल्यकाल का ज़िक्र नहीं है, उनके बारे में कपोल कल्पित बातें बना कर देश और समाज को भ्रमित किया जाता है, हाँ, युद्ध के बारे में वर्णन आता है, इस अवसर डी. ऐ. वी. स्कूल के दस विद्यार्थी और छोटे बच्चे उपस्थित रहे। छोटे बच्चों ने मन्त्र उच्चारण किया जबकि बड़े बच्चों ने आर्य समाज से जुड़े रहने की तत्परता दिखाई। सभी बच्चों को लेखन सामग्री जैसे पैन, पैंसिल, रबड़, कापी आदि बांटी गई। वेद प्रचार मन्त्री प्रो. पी. एन. चोपड़ा ने मुख्य अतिथि और उपस्थित आर्यजनों का धन्यवाद किया और आर्यजनों को विशेषकर युवा वर्ग को योगेश्वर श्री कृष्ण द्वारा गीता में बताये हुए मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया। अंत में सभ ने मिल बैठ ऋषि प्रसाद का रसावादन किया।

-अश्विनी शर्मा

"आर्य समाज बरनाला में श्रावणी उपाकर्म सम्पन्न"

दिनांकः 14.08.2019 दिन-बुधवार को आर्य समाज मंदिर बरनाला में श्रावणी उपाकर्म (रक्षा-बन्धन) पर्व वैदिक रीति से मनाया गया। पुरोहित श्री राम शास्त्री जी ने अग्निहोत्र से पूर्व यज्ञोपवीत करवाया। इस अवसर पर आर्य शिक्षण संस्थाएं श्री लाल बहादुर शास्त्री आर्य महिला कॉलेज एवं कॉलजिएट, गाँधी आर्य हाई स्कूल एवं सी. सै. स्कूल, दयानन्द केन्द्रीय विद्या मंदिर एवं आर्य मॉडल हाई स्कूल के स्टाफ एवं विद्यार्थीगण, प्रबन्धक समिति के सदस्यगण सभी उपस्थित थे। आर्य शिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थियों द्वारा अवसर अनुकूल वैदिक भजन प्रस्तुत किए गए। आर्य मॉडल हाई स्कूल की अध्यापिका सुश्री ज्योति जी ने मधुर-स्वर में भजन प्रस्तुत किया। डॉ. नीलम शर्मा ने इस पर्व के महत्व को बताते हुए एक लड़की की उसकी पारिवारिक सहभागिता के विषय में विस्तारपूर्वक चर्चा की। श्रीराम चन्द्र आर्य ने एक सुन्दर भजन प्रस्तुत किया। प्रिंसीपल-श्री राज महेन्द्र, वेद प्रचार मंत्री-श्री राम कुमार सोवती और गणमान्य सदस्य श्री सतीश सिन्धवानी ने मंच पर अवसर अनुकूल अपने विचारों की अभिव्यक्ति की। इस अवसर पर गणमान्य सदस्यों में से श्री शिव कुमार, बत्ता, श्री केवल जिन्दल, श्री सुख महिन्दर सिंह संधू, डायरेक्टर-श्रीमती अनीता सिंगला, प्रो. श्रीमती अर्चना आदि महानुभाव उपस्थित थे। अंत में आर्य समाज के प्रधान डा. सूर्यकान्त शोरी जी ने मंच पर अपनी अभिव्यक्ति में इस अवसर पर पुत्रियों को प्रेरणा देते हुए कहा कि पुत्री का एक बहन होने के साथ साथ आने वाले समय में देश के महत्वपूर्ण पदों पर कर्त्तव्य निष्ठा के साथ अपनी सेवाएं प्रदान करने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान होगा। इस प्रकार महत्वपूर्ण वक्तव्य प्रदान करते हुए आगन्तुक सज्जनों का धन्यवाद किया। शान्ति पाठ के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात प्रसाद वितरण किया गया।

रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2018-20 RNI No. 26281/74

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में कुलाधिपति का अभिनंदन एवं स्वागत समारोह

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के कुलाधिपति एवं पूर्व केन्द्रीय मंत्री डा.सत्यपाल सिंह जी का प्रथम बार विश्वविद्यालय में पधारने पर अभिनंदन एवं स्वागत समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार में पधारने पर उन्हें सम्मानित करते हुये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी एवं हरियाणा सभा के प्रधान मा. रामपाल जी। उनके साथ खडे हैं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज जी, कुलपति प्रो.रूप किशोर शास्त्री जी, हरियाणा सभा के महामंत्री श्री उम्मेद शर्मा जी। चित्र दो में महाशय धर्मपाल जी को सम्मानित करते हुये डा. सत्यपाल सिंह जी कुलाधिपति, कुलपति प्रो. रूप किशोर शास्त्री जी, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सुरेश अग्रवाल जी, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी। चित्र तीन में तीनों सभाओं के पदाधिकारी एवं अन्य संयुक्त चित्र खिंचवाते हुये। जबकि चित्र चार में उपस्थित जनसमूह एवं आर्यजन।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में अपनी नियुक्ति के पश्चात पहली बार विश्वविद्यालय में पधारने पर कुलाधिपति, सांसद एवं पूर्व केन्द्रीय मंत्री डा.सत्यपाल सिंह का अभिनंदन एवं स्वागत समारोह आयोजित किया गया। इस आयोजन में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की प्रायोजक संस्थाएं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, दिल्ली एवं हरियाणा के प्रधान श्री सुदर्शन कुमार शर्मा, श्री धर्मपाल जी आर्य, मा.रामपाल आर्य एवं महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज जी, श्री विनय आर्य जी, एवं उम्मेद शर्मा जी उपस्थित रहे। अभिनंदन एवं स्वागत समारोह में मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुये सांसद एवं पूर्व केन्द्रीय मंत्री डा. सत्यपाल सिंह ने कहा कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय एक संन्यासी की तपस्थली है। यहां पर कार्य करने का अवसर मिलना एक सौभाग्य की बात है। गुरुकुल का एक वैभवशाली इतिहास रहा है। आजादी की लड़ाई में गुरुकुल की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने कहा कि गुरुकुल की स्थापना वैदिक शिक्षा दर्शन को सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठित करने के लिये हुई थी। वैदिक चिन्तन की महत्ता पर चर्चा करते हुये उन्होंने कहा कि विश्व में शांति केवल वेदों के माध्यम से स्थापित की जा सकती है। वेदों का लक्ष्य जाति, धर्म, लिंग क्षेत्र से इतर सम्पूर्ण मानवता का कल्याण करना है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सुरेश चन्द्र आर्य ने कहा कि विश्वविद्यालय के निर्माण में आर्य समाज का योगदान उल्लेखनीय है। यह विश्वविद्यालय पूरी तरह से आर्य समाज के नियमों से संचालित है। विश्वविद्यालय के उत्थान के लिये सभाएं अपना पूरा योगदान समय समय पर देती रहती हैं। दिल्ली विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष डा. योगानंद शास्त्री ने सम्बोधित करते हुये कहा कि डा. सत्यपाल सिंह जैसे प्रभावी, पुरुषार्थी और कर्मठ व्यक्ति का विश्वविद्यालय का कुलाधिपति होना विश्वविद्यालय की एक ताकत है। उन्होंने विश्वविद्यालय की समस्त फैकल्टी को समन्वय और सहयोग से विश्वविद्यालय के हित में कार्य करने के लिये तत्पर रहने के लिये कहा।

गुरुकुल के पूर्व कुलाधिपति एवं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने स्वागत समारोह में कहा कि आज का दिन गुरुकुल के इतिहास में एक ऐतिहासिक दिन है क्योंकि आज आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, दिल्ली एवं हरियाणा तीनों सभाएं भाईयों की तरह एक साथ एक मंच पर विद्यमान हैं। उन्होंने कहा कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि कुलाधिपति विश्वविद्यालय को नई ऊंचाई पर लेकर जाएंगे। उन्होंने कहा कि पिछले कई दशकों से विश्वविद्यालय का उत्थान करने के लिये योजनाएं बनाई जा रही हैं। अब सभी सभाएं मिल कर विश्वविद्यालय को विश्वस्तरीय बनाने के लिये मिल कर कार्य करेंगी।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री धर्मपाल आर्य जी ने कहा कि इस कार्यक्रम में ऐसे व्यक्ति का सान्निध्य मिला हुआ है जो एक कुशल प्रशासनिक अधिकारी रह चुका है और वर्तमान में इस विश्वविद्यालय के कुलाधिपति पद को सुशोभित कर रहे हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के प्रधान मा.रामपाल जी ने कहा कि हरियाणा सभा ने समय समय पर विश्वविद्यालय की उन्नति के लिये अपना योगदान दिया है। हमारे बीच में देश के माने हुये प्रशासनिक अधिकारी और सांसद डॉ. सत्यपाल सिंह आज मंच की शोभा बढ़ा रहे हैं।

अभिनंदन एवं स्वागत समारोह में दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के महामंत्री श्री विनय आर्य ने कहा कि अब विश्वविद्यालय के उत्थान के लिये जो भी सहयोग होगा वह पूरा किया जायेगा। सभाएं नई जमीनें खरीदेंगी और आर्य समाज का प्रचार प्रसार करेगी। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति का चयन तीनों सभाओं ने मिल कर किया है। आज हमें गौरव महसूस हो रहा है कि डा. सत्यपाल सिंह जैसा व्यक्तित्व विश्वविद्यालय का नेतृत्व और संरक्षण करेगा। उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालय की पुरानी सीनेट को भी हर हाल में बहाल किया जायेगा।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज जी ने कहा कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की ख्याति दूर दूर तक है और तीनों सभाएं इस ख्याति को बरकरार रखेंगी। उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालय को योग्यतम एवं कर्मठ कुलाधिपति मिले हैं उनके नेतृत्व में विश्वविद्यालय नवीन कीर्तिमान को स्थापित करेगा।

विश्वविद्यालय के नवनियुक्त कुलपति प्रो. रूप किशोर शास्त्री ने अभिनंदन एवं स्वागत समारोह में पधारे समस्त अतिथियों का आभार प्रकट किया। अपने धन्यवाद ज्ञापन में उन्होंने कहा कि गुरुकुल के विकास के लिये वे सब को साथ लेकर आगे बढ़ेंगे। समारोह में विश्वविद्यालय के कुलसचिव प्रो.पी.सी. जोशी ने गुरुकुल के प्रगति सोपान को पावर प्वायंट प्रेजेंटेशन के माध्यम से प्रदर्शित किया जिसमें गुरुकुल की विकास यात्रा को दिखाया गया। प्रो. सोमदेव शतांशु द्वारा कुलाधिपति को विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त अभिनंदन पत्र का वाचन किया गया। (शेष पृष्ठ सात पर)

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक–प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org